आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल

समीक्षक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

सम्पादक

डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल

एम.ए. (हिंदी), एम.ए. (भाषाविज्ञान), साहित्याचार्य, पी-एच.डी., डी.लिट्. (मानद)

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,

हिंदी एवं भाषाविज्ञान विभाग,

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

अमन प्रकाशन

(पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स)

104A/118, रामबाग, कानपुर-12

(उत्तर प्रदेश)

SAMICHHAK ACHARYA NANDDULARE VAJPAI

By : Dr. Tribhuvan Nath Shukla

Price : Rupees Three Hundred Only
Rs. 300.00 Only

I.S.B.N. : 978-81-906617-7-5

✿ पुस्तक	:	समीक्षक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
✿ संपादक	:	डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल
✿ प्रकाशक	:	अमन प्रकाशन 104-A/118, रामबाग, कानपुर ☎ : (M) 9839218516 (R) 0512-2574766
✿ संस्करण	:	प्रथम, सन् 2009
✿ सर्वाधिकार	:	लेखकाधीन
✿ मूल्य	:	तीन सौ रुपये मात्र
✿ शब्दसज्जा	:	च्वाईस कम्प्यूटर ग्राफिक्स ☎ : 9336248189
✿ मुद्रक	:	अजित आफसेट रामबाग, कानपुर ☎ : (0512) - 2553756

समर्पण



यह कृति रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय
के यशस्वी कुलपति,
अंतरराष्ट्रीय ख्यातिलब्ध वैज्ञानिक,
साहित्य एवं संस्कृति चेता
प्रो० सत्येन्द्र मोहन पाल खुराना
को
सादर समर्पित!

पुरोवाक्

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी अपने युग की देन एवं पूर्ति थे। देन इस अर्थ में कि उनके पूर्व आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हो चुके थे। वे वाजपेयी के गुरुकल्प रहे। उनकी समीक्षा पद्धति को मान्य करते हुए भी वाजपेयी जी उनसे पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे। शुक्लजी समीक्षा में एक अनुशासन (अपने खाँचे-ढाँचे) को लेकर चले। इससे बहुत कुछ छूट भी गया और टूट भी गया। इस पूरी परंपरा से वाजपेयी जी ने कैसे अपनी समीक्षा का प्रतिमान खड़ा किया; यही इस पुस्तक का अथ है और इति भी। इसमें वाजपेयी जी के समकालीनों से लेकर आज तक के विद्वानों का लेखन है। वस्तुतः ये सभी लेख स्नातकोत्तर हिंदी एवं भाषाविज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर द्वारा वाजपेयी जी की जन्मशताब्दी पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत किए गए थे। इन लेखों के साथ वाजपेयी जी जब यथासमय यत्र-तत्र लिखे गए पूर्व के विद्वानों के लेखों को सम्मिलित कर लिया गया है। इसके लिए मैं सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस संगोष्ठी का उद्घाटन हमारे विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. सत्येन्द्र मोहन पॉल खुराना ने किया था। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में कहा था कि यह वर्ष विश्वविद्यालय की स्वर्ण जयंती का वर्ष है। स्वर्णजयंती के उपलक्ष्य में वर्ष भर चलने वाली राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों का शुभारम्भ आज हिंदी विभाग द्वारा आयोजित संगोष्ठी से हो रहा है, इसकी मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है। मैं इस आयोजन के लिए विभागाध्यक्ष प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल को विशेष साधुवाद देता हूँ।

माननीय कुलपति जी के इस वक्तव्य से प्रेरित होकर स्वर्णजयंती के समापन पर भी प्रवासी साहित्य पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। उसमें उनकी सहभागिता रही। कुल मिलाकर यह पुस्तक एक संयोग है। इसमें मेरा योगदान न के बराबर है। इतना अवश्य है कि मैंने एक नातिदीर्घ भूमिका लिखकर हिंदी आलोचना की विकासयात्रा को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इसमें मुझे कितनी सफलता मिली है - इसका निर्णय मैं सुधीजनों पर छोड़ता हूँ। इस कार्य को बड़ी तत्परता से प्रकाशित करने के लिए अमन प्रकाशक के प्रबंधक प्रिय अरविन्द वाजपेयी जी साधुवादार्ह हैं। इत्यलम्।

–प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल
29 मई, 2008

भूमिका

हिंदी आलोचना का वास्तविक प्रारंभ भारतेन्दु युग में चौधरी बद्रीनारायण 'प्रेमघन' और बालकृष्ण भट्ट के द्वारा हुआ। आनन्द कादम्बिनी के एक अंक में प्रेमघन जी ने बाणभट्ट की कादम्बरी की प्रशंसात्मक आलोचना एक लेख में की थी। सन् 1882 में लाला श्री निवासदास रचित 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की समालोचना 'प्रेमघन' ने 'आनन्द कादम्बिनी' में तथा पंडित बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' में की थी। सन् 1885 में आनन्द कादम्बिनी में ही प्रेमघन जी ने बाबू गदाधर सिंह द्वारा किए गए 'बंग विजेता' नामक बंगला उपन्यास के हिंदी अनुवाद की आलोचना की। उन्होंने इस उपन्यास के अंतरंग-बहिरंग दोनों पक्षों पर विचार किया है। इसके अतिरिक्त अन्य तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'भारतमित्र' आदि में भी पुस्तक समीक्षा प्रकाशित होती थी। पहले ये समीक्षाएँ गुण-दोष तथा विवेचन तक सीमित थीं, जिनका स्तर बहुत साधारण हुआ करता था, किंतु क्रमशः इनका स्तर गंभीर होता गया।

इस प्रकार व्यावहारिक आलोचना का यह बीज ही आगे चलकर आलोचना का विशाल वृक्ष बना। भारतेन्दु युग इस दृष्टि से विशेष महत्त्व का है, जहाँ संस्कृत के समीक्षासिद्धांत के प्रति गंभीर विवेचन हुआ, वहीं व्यावहारिक दृष्टि से भी आलोचना के मानदंड निर्धारित हुए।

'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (1897 ई.) के प्रकाशन से हिंदी समालोचना को नया बल मिला। उसमें कवियों और लेखकों में साहित्य के प्रति अनुराग और लेखन सुरुचि उत्पन्न करने के लिए लेख रहते थे। सन् 1896 ई. में गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ने 'समालोचना' पुस्तिका निकाली। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के पद्यात्मक 'समालोचनादर्श' तथा अम्बिकादत्त व्यास कृत 'गद्यकाव्य मीमांसा' जैसी रचनाएँ भी आलोचनात्मक दृष्टि से लिखी गयी थीं। इनमें साहित्य के गुण-दोष-निदर्शन और गवेषणापूर्ण अध्ययन दोनों थे। इन आलोचनात्मक रचनाओं के अनुकरण में समालोचनाएँ लिखी जाने लगीं। नागरी प्रचारिणी सभा ने अँगरेजी के समालोचकों की विद्वतापूर्ण, द्वेष हीन और सहानुभूतिपरक आलोचना का आदर्श उपस्थित किया। इसी प्रकार प्रारंभिक आलोचना के विकास में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनकी पत्रिका 'सरस्वती' ने विशेष प्रोत्साहन दिया। सन् 1900 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'विक्रमांकदेवचरित-चर्चा', 'नैषधचरितचर्चा', 'हिंदी कालिदास की समालोचना' जैसे समालोचनात्मक लेख लिखे। 'हिंदी कालिदास की समालोचना' में उन्होंने लाला सीताराम द्वारा अनुदित कालिदास के ग्रंथों में भाषा संबंधी त्रुटियों का उल्लेख किया।

बीसवीं शती के प्रथम चतुर्थांश में महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, किशोरीलाल गोस्वामी, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', श्यामसुन्दर दास तथा रामचन्द्र शुक्ल आदि रचनाकारों